प्रकाशनार्थ अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

(माननीय श्री न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर)

रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 5452/2006

याचिकाकर्ता शशिकांत वर्मा

बनाम

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उत्तरदातागण छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य

(माननीय श्री न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर)

रिट याचिका क्रमांक 5452/2006

याचिकाकर्ता शशिकांत वर्मा

बनाम

उत्तरवादीगण छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री बी.डी. गुरु।

श्री प्रवीण दास, उप शासकीय अधिवक्ता, उत्तरवादीगण/राज्य की ओर से।

(भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत रिट याचिका)

एकल पीठ: माननीय न्यायमूर्ति श्री **सतीश के. अग्निहोत्री**

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आदेश

(21 नवम्बर, 2011 को पारित)

इस रिट याचिका में उत्तरवादी क्र. 2 यानी जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सरगुजा (अंबिकापुर) द्वारा दिनांक 10.2.2003 को पारित आदेश (अनुलग्नक पी-6) को चुनौती दी गई है, जिसमें याचिकाकर्ता के स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन को स्वीकार किया गया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को प्रारंभ में वर्ष 1976 में क्लर्क के पद पर नियुक्त किया गया था और उसके बाद उन्हें सहायक लेखाकार-11 के पद पर पदोन्नत किया गया। 13.11.2002 को (अनुलग्नक पी-1 के माध्यम से) याचिकाकर्ता ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन किया, जिसे उत्तरवादी क्र. 3 ने 16.11.2002 को (अनुलग्नक पी-2 के माध्यम से) यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि उक्त आवेदन याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित पेंशन नियमों के अनुसार निर्धारित प्रपत्र में नहीं किया गया था। 3.12.2002 को

याचिकाकर्ता ने अनुलग्नक पी-3 और पी-4 के माध्यम से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए पुनः आवेदन किया। अनुलग्नक पी-3 के रूप में चिह्नित आवेदन में याचिकाकर्ता ने 20.3.2003 से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की मांग की थी। 4.2.2003 को अनुलग्नक डी-1 के माध्यम से याचिकाकर्ता ने उत्तरवादी क्र. 2 को दिनांक 3.12.2002 के स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पत्र को वापस लेने के लिए आवेदन किया। याचिकाकर्ता के अनुसार, 10.2.2003 को अनुलग्नक पी-5 के माध्यम से, उन्होंने दिनांक 4.2.2003 के अपने पूर्व आवेदन (अनुलग्नक डी-1) का हवाला देते हुए उत्तरवादी क्र. 2 को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति आवेदन को अस्वीकार करने के लिए पुनः आवेदन किया। उनका आगे का मामला यह है कि दिनांक 10.2.2003 को ही अनुलग्नक पी-6 में उल्लिखित आदेश के माध्यम से, उत्तरवादी क्र. 2 ने याचिकाकर्ता के दिनांक 13.11.2002 के स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति आवेदन को 20.3.2003 से स्वीकार कर लिया।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दिनांक 10.2.2003 का विवादित आदेश निम्नलिखित आधारों पर अवैध और मनमाना है:

(i) यह कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए दिनांक 13.11.2002 का आवेदन (अनुलग्नक पी-1) प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दिनांक 16.11.2002 को अनुलग्नक पी-2 के माध्यम से पहले ही अस्वीकार कर दिया गया था और इस कारण से उसी आवेदन को बाद में स्वीकार नहीं किया जा सकता था।

(ii) याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 4.2.2003 और 10.2.2003 को दिए गए आवेदन को पूरी तरह से अनदेखा करते हुए स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का आदेश पारित किया गया है, जिसमें उसने दिनांक 3.12.2002 के अपने आवेदन को वापस लेने की मांग की थी।

(iii) याचिकाकर्ता द्वारा 20.3.2003 से पहले यानी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की प्रस्तावित प्रभावी तिथि से पहले अपना आवेदन वापस ले लेने के बाद, प्रतिवादी संख्या 2 को विवादित आदेश पारित नहीं करना चाहिए था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने श्रीकांत एस.एम. बनाम भार्थ अर्थ मूवर्स लिमिटेड के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया, जो (2005) 8

एससीसी 314 में प्रकाशित हुआ था, और यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम विंग कमांडर टी. पार्थसारथी के मामले में, जो (2001) एससीसी 158 में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने किशोर कुमार व्यास बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भी अवलंब लिया है, जो 2008 (1) सीजीएलजे 259 में प्रकाशित हुआ था।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलील का जवाब देते हुए, उत्तरवादीगण के अधिवक्ता के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि यह याचिका केवल विलंब और देरी के आधार पर खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि आक्षेपित आदेश 10.2.2003 को पारित किया गया था, जबकि यह याचिका 4.10.2006 को दायर की गई है। उन्होंने यह भी कहा कि इससे पहले 15.3.2005 को याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 1133/2005 दायर की थी, जिसमें उत्तरवादीगण को 24 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान करने का निर्देश देने की मांग की गई थी। उत्तरवादीगण के अधिवक्ता के अनुसार, पिछली रिट याचिका में याचिकाकर्ता ने यह प्रकथन नहीं किया था कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए उसका आवेदन गलत तरीके से स्वीकार किया गया था या वह केवल यह अनुतोष मांग रहा था कि उत्तरवादीगण को 24 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित सेवानिवृत्ति बकाया का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए। राज्य के अधिवक्ता के अनुसार, उक्त रिट याचिका पर इस न्यायालय द्वारा 11.5.2005 को निर्णय लिया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को उक्त आदेश पारित होने के 10 दिनों के भीतर उत्तरवादी क्रमांक 2 को अभ्यावेदन देने की अनुमति दी गई थी, जिसे बदले में याचिकाकर्ता की शिकायत पर विचार करने के बाद, अभ्यावेदन प्राप्त होने की तिथि से दो महीने के भीतर उस पर निर्णय लेने और उचित आदेश पारित करने के लिए कहा गया था। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन प्राप्त होने के बाद, उनके सभी सेवानिवृत्ति बकाया का भुगतान कर दिया गया था और इस संबंध में सुसंगत दस्तावेज अनुलग्नक आर-2 है। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता की पेंशन का वितरण 28.7.2003 को अनुलग्नक आर-3 के माध्यम से पहले ही शुरू हो चुका था। उनके अनुसार, याचिकाकर्ता ने अपनी सेवानिवृत्ति की बकाया राशि प्राप्त करने के काफी समय बाद आक्षेपित आदेश को अभिखंडित करने की मांग की है और यह याचिका फसल के काटने के काफी समय बाद बदली हुई परिस्थितियों में दायर की गई प्रतीत होती है। राज्य के अधिवक्ता के अनुसार, उत्तरवादी क्रमांक 2 द्वारा भेजे गए रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन करने और फिर उसे वापस लेने की आदत रखता था। उनका कहना है कि पहले भी, यानी 2.7.1999 को, याचिकाकर्ता ने इस उद्देश्य से

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उत्तरवादी क्रमांक 2 के समक्ष आवेदन दिया था और उस आवेदन पर 30.7.1999 को आदेश पारित किया गया था, जिसमें इसे 2.10.1999 से स्वीकार कर लिया गया था। हालांकि, याचिकाकर्ता की रिट याचिका पर उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार, उन्हें जनवरी 2002 से फिर से ड्यूटी पर वापस ले लिया गया और उसके बाद लगभग 10 महीनों के भीतर उन्होंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए फिर से आवेदन प्रस्तुत किया। उन्होंने आगे कहा कि 23.12.2002 को उत्तरवादी क्रमांक 2 के कार्यालय से एक ज्ञापन जारी किया गया था जिसमें याचिकाकर्ता से यह शपथपत्र प्रस्तुत करने को कहा गया था कि वह स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए अपना आवेदन वापस नहीं लेगा जैसा कि उसने पहले वर्ष 1999 में किया था, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा ऐसा कोई शपथपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया और इसलिए उत्तरवादी क्रमांक 2 द्वारा दिनांक 10.2.2003 के आक्षेपित आदेश को पारित करना उचित था। अपने तर्कों के समर्थन में उत्तरवादीगण के अधिवक्ता ने भूप सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (1992) 3 एससीसी 136, आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम डब्ल्यू.आई.ए. करीम और अन्य (1991 सप्लीमेंट (2) एससीसी 183), भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य बनाम ज्योतिष चंद्र बिस्वास (2000) 6 एससीसी 562, और उत्तर प्रदेश जल निगम और अन्य बनाम जसवंत सिंह और अन्य (2006) 11 एससीसी 464 के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया। इसके अलावा, चंद्रमणि प्रसाद दुबे बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय पर भी अवलंब लिया है। और अन्य 2005 (3) एम.पी.एल.जे. 241 में प्रकाशित किया गया और भारत संघ और अन्य बनाम केंद्रीय सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय के मामले में 1979 एल.पी.एल.जे. 808 में प्रकाशित किया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

5. उत्तरवादीगण के अधिवक्ता के इस तर्क का उत्तर देते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपने प्रत्युत्तर के आधार पर यह प्रस्तुत किया है कि पिछली रिट याचिका दायर करते समय याचिकाकर्ता को यह आभास था कि उक्त याचिका में उसने दिनांक 10.2.2003 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी थी। याचिकाकर्ता के आचरण को उचित ठहराते हुए उन्होंने कहा कि चूंकि याचिकाकर्ता को अपने बेटे की उच्च शिक्षा के लिए पैसों की सख्त जरूरत थी, इसलिए उसने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन किया, यह सोचकर कि उसे अपने बेटे की शिक्षा के लिए एकमुश्त राशि मिलेगी, लेकिन जब वह राशि नहीं दी गई, तो उसे वर्ष 1999 में किया गया अपना पिछला आवेदन वापस लेने के लिए विवश होना पड़ा और फिर उसने उत्तरवादीगण से एकमुश्त राशि प्राप्त करने का प्रयास किया और इसलिए उसने दूसरी बार स्वैच्छिक

सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन किया और जब उस पर तुरंत विचार नहीं किया गया, तो उसने अपने बेटे को बेहतर शिक्षा प्रदान करने के सपने के साथ इसे फिर से वापस ले लिया। उनका निवेदन है कि मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए विलंब और लापरवाही को क्षमा किया जाना चाहिए, क्योंकि याचिकाकर्ता का संपूर्ण कार्य अपने परिवार के कल्याण के लिए ही प्रतीत होता है। उनका निवेदन है कि याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति में अभी एक वर्ष शेष है, इसलिए उन्हें सेवा की निरंतरता मानते हुए कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी जाए। याचिकाकर्ता उत्तरवादी के समक्ष ग्रेच्युटी और बीमा राशि जमा करने के लिए भी तैयार हैं और उन्हें प्राप्त पेंशन को उनके भविष्य के लाभों में समायोजित किया जाए।

6. हमने पक्षकारों के अधिवक्ताओं की बात सुनी और अभिलेख में उपलब्ध दस्तावेजों का अध्ययन किया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ ने एस.एस. राठौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1989) 4 एससीसी 582 में बर्खास्तगी के आदेश के विरुद्ध न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन दाखिल करने की समय सीमा पर विचार करते हुए निम्नलिखित अवलोकन किया:

> "22. ऐसे मामलों में स्थिति एकसमान होनी चाहिए। इसलिए, ऐसे प्रत्येक मामले में, कानून द्वारा निर्धारित अपील या अभ्यावेदन का निपटारा होने पर ही वाद का कारण पहले उत्पन्न होगा, और यदि ऐसा आदेश नहीं दिया जाता है, तो अपील दाखिल करने या अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की तिथि से छह महीने की समाप्ति पर मुकदमा करने का अधिकार पहले उत्पन्न होगा। परिसीमा निर्धारित करने के मामले में प्रतिष्ठान के प्रमुख को केवल ज्ञापन या अभ्यावेदन प्रस्तुत करने पर विचार नहीं किया जाएगा।

8. आर. एन. बोस बनाम यूनियन ऑफ इंडिया के मामले में (AIR 1970 SC 470) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी कि याचिकाकर्ता को कोई अनुतोष नहीं दी जा सकती है जो बिना किसी उचित स्पष्टीकरण के अत्यधिक देरी के बाद न्यायालय में आता है।

9. मध्य प्रदेश राज्य बनाम नंदलाल मामले (AIR 1987 SC 251) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी कि उच्च न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करते हुए सामान्यतः विलंब करने वाले, आलसी या निष्क्रिय तथा सुस्त याचिकाकर्ताओं की सहायता नहीं करता है। यदि याचिकाकर्ता की ओर से अत्यधिक विलंब होता है और ऐसे विलंब का संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया जाता है, तो उच्च न्यायालय अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने और अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर सकता है। यह भी टिप्पणी की गई थी कि यदि रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग अनुचित विलंब के बाद किया जाता है, तो इसका प्रभाव न केवल कठिनाई और असुविधा बल्कि तीसरे पक्ष के साथ अन्याय भी हो सकता है। रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, अस्पष्ट विलंब और इस बीच तीसरे पक्ष के अधिकारों का सृजन एक महत्वपूर्ण कारक है जो उच्च न्यायालय को यह निर्णय लेने में प्रभावित करता है कि ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाए या नहीं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

10. सुप्रीम कोर्ट ने उत्तर प्रदेश जल निगम और अन्य बनाम जसवंत सिंह और अन्य (2006) 11 एससीसी 464 के मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> 6. इस न्यायालय ने कई निर्णयों में विलंब और लापरवाही के प्रश्न की जांच की है और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधीन अनुतोष के प्रयोग में विलंब और लापरवाही को एक महत्वपूर्ण कारक माना है। जब कोई व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सजग नहीं रहता और स्थिति को स्वीकार कर लेता है, तो क्या उसकी रिट याचिका पर कुछ वर्षों बाद इस आधार पर सुनवाई की जा सकती है कि उसे वही अनुतोष दी जानी चाहिए जो समान स्थिति वाले उस व्यक्ति को दी गई थी जो अपने अधिकारों के प्रति सजग था और जिसने अपनी सेवानिवृत्ति को चुनौती दी थी, जो 58 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर की गई थी? हमें एक चार्ट उपलब्ध कराया गया है जिसमें यह बताया गया है कि निगम के कर्मचारियों द्वारा उनकी सेवानिवृत्ति से पहले लगभग 9 रिट याचिकाएं दायर की गई थीं, जिनकी सेवानिवृत्ति 30-6-2005 और 31-7-2005 के बीच हुई थी। दो रिट याचिकाएँ ऐसी थीं जिनमें कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया था। उन्हें अंतरिम आदेश दिया गया था। इसके बाद कई रिट याचिकाएँ दायर की गईं जिनमें 2001, 2002, 2003, 2004 और 2005 में सेवानिवृत्त हुए कर्मचारियों ने अपनी सेवानिवृत्ति के काफी समय बाद 2005 और

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

7. अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने हमारा ध्यान विभिन्न निर्णयों की ओर आकर्षित करते हुए यह स्पष्ट किया कि जो लोग इस प्रकार की लापरवाही बरतते हैं और स्थिति को स्वीकार करते हैं, उन्हें कोई अनुतोष नहीं दी जानी

चाहिए क्योंकि इससे निगम पर 17,80,43,108 रुपये का भारी वित्तीय बोझ पड़ेगा। इसलिए, अनुतोष केवल उन लोगों को दी जानी चाहिए जो सेवा में बने रहे और जिन्होंने समय पर अपनी रिट याचिकाएं दायर कीं, न कि उन सभी को जिन्होंने सेवानिवृत्ति के काफी समय बाद रिट याचिकाएं दायर कीं। इस संबंध में, हमारा ध्यान इस न्यायालय के एक निर्णय, रूप डायमंड्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1989) 2 एससीसी 356 की ओर आकर्षित किया गया, जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने टिप्पणी की कि जो लोग तब तक निष्क्रिय बैठे रहे जब तक कि किसी और ने शुल्क वापसी के लिए मामले को न्यायालय में नहीं उठाया, उन्हें लाभ नहीं दिया जा सकता। उस संदर्भ में, माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 356-57)

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"याचिकाकर्ता उन दावों को फिर से उठा रहे हैं जिन्हें उन्होंने कई वर्षों से आगे नहीं बढ़ाया था। याचिकाकर्ता सतर्क नहीं थे, बल्कि निष्क्रिय रहना पसंद करते थे और किसी और के मामले के निपटारे का इंतजार करते रहे। उनके मामले की तुलना उस मामले से नहीं की जा सकती जिसमें किसी कानून को न्यायालय द्वारा असंवैधानिक और अमान्य घोषित कर दिया गया हो, ताकि लोग उस कानून के तहत भुगतान की गई धनराशि को वापस प्राप्त कर सकें जिसे बाद में अमान्य घोषित कर दिया गया हो। पहली बार खारिज होने के लगभग एक साल बाद दायर की गई इस रिट याचिका में भी अस्पष्ट और अत्यधिक देरी हुई है। जैसा कि न्यायालय ने दुर्गा प्रसाद मामले (1969) 1 एससीसी 185 में कहा था, देश की विनिमय दर और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संबंध में सरकार की नीति साल-दर-साल बदलती रहती है। इन मामलों में यह आवश्यक है कि सरकार के आदेशों से पीड़ित व्यक्ति कानून, नियम या आदेश द्वारा प्रदान किए गए सभी उपायों का

उपयोग करने के बाद ही शीघ्रता से उच्च न्यायालय में अपील करें। इसलिए ये देरी न्यायालय को हस्तक्षेप न करने के लिए पर्याप्त है। यदि अपील का अधिकार है यदि यह आदेश उपलब्ध है, तो रिट याचिका को खारिज करने का यह आदेश ऐसी किसी भी अपील में याचिकाकर्ता के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।

12. कानून के कथन को हाल्सबरी के इंग्लैंड के कानूनों, पैरा 911, पृष्ठ 395 में भी संक्षेप में इस प्रकार बताया गया है:

"यह निर्धारित करने में कि क्या इतनी देरी हुई है जो विलंब के बराबर हो, विचार करने योग्य मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

(i) दावेदार की ओर से सहमति; और

(ii) उत्तरवादी की ओर से स्थिति में कोई भी परिवर्तन हुआ हो

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

इस संदर्भ में मौन स्वीकृति का अर्थ किसी अधिकार के उल्लंघन के दौरान चुपचाप खड़े रहना नहीं है, बल्कि उल्लंघन पूरा होने और दावेदार को इसकी जानकारी होने के बाद सहमति देना है। दावेदार को उपाय देना अन्यायपूर्ण है, यदि उसने अपने आचरण से ऐसा कार्य किया है जिसे उचित रूप से उस अधिकार का त्याग माना जा सकता है; या यदि उसने अपने आचरण और लापरवाही से, भले ही उपाय का त्याग न किया हो, दूसरे पक्ष को ऐसी स्थिति में डाल दिया है जिसमें बाद में उपाय का दावा किए जाने पर उसे रखना उचित नहीं होगा। ऐसे मामलों में समय का बीत जाना और देरी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इन्हीं बातों पर विलंब का सिद्धांत आधारित है।

13. ऊपर संक्षेप में बताए गए विधि कथन के आलोक में, उत्तरवादी दोषी हैं क्योंकि उन्होंने सेवानिवृत्ति को स्वीकार कर लिया और समय रहते इसे चुनौती नहीं दी। यदि वे पर्याप्त

> सतर्क होते, तो वे अन्य लोगों की तरह इस मामले में रिट याचिकाएँ दायर कर सकते थे। अतः, जब भी ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं ने समय बर्बाद किया या समय पर रिट याचिकाएँ दायर करने के लिए तत्परता नहीं दिखाई, तो ऐसे मामलों में न्यायालय को संबंधित पक्ष को अनुतोष देने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। दूसरे, यह भी ध्यान में रखना होगा कि क्या संबंधित पक्ष द्वारा सहमति या छूट देने से अनुतोष दिए जाने पर अन्य पक्षों को कोई हानि होगी। वर्तमान मामले में, यदि उत्तरवादीगण ने अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन बताते हुए अपनी सेवानिवृत्ति को चुनौती दी होती, तो शायद निगम देनदारी को पूरा करने के लिए धन जुटाने के उचित कदम उठा सकता था, लेकिन अपने अधिकारों का दावा न करके उत्तरवादीगण ने समय बीतने दिया और कुछ वर्षों के बाद उन्होंने दो वर्षों के लाभ का दावा करते हुए रिट याचिकाएं दायर की हैं। इससे निश्चित रूप से निगम को धन जुटाना पड़ेगा, जिसका निगम के वित्तीय प्रबंधन पर गंभीर वित्तीय प्रभाव पड़ेगा। जब ये लोग स्वयं ही अपने अधिकारों का त्याग करने और मौन सहमति देने के दोषी हैं, तो न्यायालय को उनकी मदद क्यों करनी चाहिए?

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने त्रिदीप कुमार डिंगल और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (2009) आई एससीसी 768 के मामले में, जहां अपीलकर्ताओं ने न्यायालय में आने में 559 दिन का समय लिया, जिससे अस्पष्ट और अत्यधिक देरी हुई, निम्नलिखित टिप्पणी की:

> हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते। यह सर्वविदित है कि मौलिक अधिकार का त्याग नहीं किया जा सकता। लेकिन संविधान के अनुच्छेद 32, 226, 227 या 136 के तहत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, यह न्यायालय कुछ कारकों को ध्यान में रखता है और उनमें से एक कारक याचिकाकर्ता द्वारा रिट न्यायालय में याचिका दायर करने में विलंब और लापरवाही है। यह सर्वविदित है कि रिट जारी करने की शक्ति विवेकाधीन है। संविधान के अनुच्छेद 32 या 226 के तहत अनुतोष देने से इनकार करने का एक आधार यह है कि याचिकाकर्ता विलंब और लापरवाही का दोषी है।

12. त्रिदीप कुमार डिंगल और अन्य (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी भी की:

> यदि याचिकाकर्ता रिट न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहता है, तो उसे यथाशीघ्र न्यायालय में उपस्थित होना चाहिए। रिट याचिका दायर करने में अत्यधिक विलंब, विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार करने का एक ठोस आधार होगा। इस सिद्धांत का अंतर्निहित उद्देश्य पुराने दावों को उठाने और उन मामलों को फिर से उजागर करने को प्रोत्साहित करना नहीं है जिनका निपटारा या समाधान हो चुका है या जहां इस बीच तीसरे पक्ष के अधिकार अर्जित हो गए हैं (देखें मध्य प्रदेश राज्य बनाम भाईलाल बही, मून मिल्स लिमिटेड बनाम औद्योगिक न्यायालय और भूप सिंह बनाम भारत संघ)। यह सिद्धांत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले में भी लागू होता है (देखें तिलोकचंद मोतीचंद बनाम एच.बी. मुंशी, दुर्गा प्रसाद बनाम मुख्य आयात एवं निर्यात नियंत्रक और रवींद्रनाथ बोस बनाम भारत संघ)।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

13. त्रिदीप कुमार डिंगल और अन्य (उपरोक्त) में आगे यह भी कहा गया था कि अंतर्गत:

> "न्यायालय में याचिका दायर करने की कोई ऊपरी या निचली सीमा नहीं है। यह मामला न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है और मामले

> के अनुसार तथ्यों के आधार पर इसका निर्णय लिया जाना चाहिए। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि मौलिक अधिकार का उल्लंघन क्या है, क्या उपचार मांगे गए हैं और देरी कब और कैसे हुई।"

14. यूनुस (बाबूभाई) ए हामिद पदवेकर बनाम महाराष्ट्र राज्य (जेटी 2009 (3) एससी 487) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने आर.एन. बोस (उपरोक्त) और मध्य प्रदेश राज्य बनाम नंदलाल (उपरोक्त) के निर्णयों का अनुमोदन करते हुए निम्नलिखित अवलोकन किया:

> उच्च न्यायालय को अपने विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग करते समय विलंब या लापरवाही को ध्यान में रखना चाहिए। उचित मामले में, उच्च न्यायालय अपने असाधारण अधिकारों का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है यदि आवेदक की ओर से अपने अधिकार का दावा करने में ऐसी लापरवाही या चूक हुई हो, जो समय बीतने और अन्य परिस्थितियों के साथ मिलकर विपक्षी पक्ष को नुकसान पहुंचाती हो।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

15. भूप सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (1992) 3 एससीसी 136 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> 7. किसी शासकीय कर्मचारी से, जिसका वैध दावा हो, यह अपेक्षा की जाती है कि वह उचित समय सीमा के भीतर न्यायालय में अपनी मांग के लिए याचिका दायर करे, बशर्ते कोई निश्चित समय सीमा लागू न हो। यह इसलिए आवश्यक है ताकि वर्षों से एक निश्चित आधार पर चल रही प्रशासनिक व्यवस्था में व्यवधान न आए। इस बीच, कार्यरत कर्मचारियों को अधिक अनुभव प्राप्त होता है और वे अधिकार अर्जित करते हैं, जिन्हें किसी व्यक्ति को बिना वास्तविक अनुभव के उच्च पद पर नियुक्ति देकर आसानी से समाप्त नहीं किया जा सकता, खासकर तब जब वह वर्षों तक चुप रहकर दावा प्रस्तुत करने से पहले निष्क्रिय रहा हो। बिना कार्य किए पुनः नियुक्ति के परिणामी लाभों के अलावा, प्रशासनिक व्यवस्था और अन्य कर्मचारियों पर पड़ने वाला प्रभाव, किसी पुराने

दावे पर विचार न करने का एक मजबूत कारण है, जब तक कि देरी का संतोषजनक स्पष्टीकरण न दिया जाए और वह याचिकाकर्ता की गलती के कारण न हो। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है जिसे वर्तमान मामले में भेदभाव के तर्क पर विचार करते समय उचित महत्व दिया जाना चाहिए, ताकि यह तय किया जा सके कि याचिकाकर्ता उन लोगों के समान वर्ग में है जिन्होंने कई साल पहले अपनी बर्खास्तगी को चुनौती दी थी और परिणामस्वरूप उन्हें पुनः नियुक्ति की अनुतोष दी गई थी। हमारी राय में, याचिकाकर्ता के मामले में कई वर्षों की अस्पष्ट अवधि बीत जाने के कारण, उसे उन अन्य बर्खास्त कांस्टेबलों की श्रेणी में नहीं रखा जाना चाहिए जिन्होंने पहले न्यायालय में याचिका दायर की थी और पुनः नियुक्ति प्राप्त की थी। याचिकाकर्ता को 1978 में, जब याचिकाओं का दूसरा बैच दायर किया गया था, तब स्पष्ट हो गया था कि उसे भी पुनः नियुक्ति के लिए याचिका दायर करनी होगी। फिर भी उसने 1989 तक प्रतीक्षा करना चुना। धरमपाल मामला [(1990) 4 एससीसी 13] भी 1987 में तय किया गया था। इसलिए, भेदभाव का तर्क याचिकाकर्ता के लिए मान्य नहीं है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

8. इस मामले का एक और पहलू भी है। अत्यधिक और अस्पष्ट विलंब या लापरवाही स्वयं याचिकाकर्ता को अनुतोष देने से इनकार करने का आधार है, चाहे उसका दावा कितना भी ठोस क्यों न हो। यदि कोई व्यक्ति जो अनुतोष का हकदार है, लंबे समय तक चुप रहता है, तो इससे दूसरों के मन में यह धारणा बन जाती है कि उसे उस अनुतोष को पाने में कोई रुचि नहीं है। ऐसे में, दूसरों को उस धारणा के आधार पर कार्रवाई करने का पूरा अधिकार होता है।सेवा मामलों में यह बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, जहाँ रिक्तियों को शीघ्रता से भरना आवश्यक होता है। किसी व्यक्ति को बाईस वर्षों की सेवा समाप्ति को चुनौती देने
की अनुमति नहीं दी जा सकती, जबकि इस अत्यधिक विलंब का कोई ठोस कारण न हो, केवल इसलिए कि इसी प्रकार बर्खास्त

किए गए अन्य लोगों को उनकी पिछली याचिकाओं को स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप बहाल कर दिया गया था। याचिकाकर्ता के तर्क को स्वीकार करने से संपूर्ण सेवा न्यायशास्त्र उलट जाएगा और हम धर्मपाल मामले की व्याख्या याचिकाकर्ता द्वारा सुझाए गए तरीके से करने में असमर्थ हैं। अनुच्छेद 14 या गैर-भेदभाव का सिद्धांत एक न्यायसंगत सिद्धांत है और इसलिए, उस आधार पर दावा की गई कोई भी अनुतोष स्वयं न्यायसंगत होनी चाहिए और उस अवधारणा से भिन्न नहीं होनी चाहिए। हमारी राय में, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता को अनुतोष देना अन्यायपूर्ण होगा, न कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दावा किए गए अनुसार इसे अस्वीकार करना भेदभावपूर्ण होगा। हम आगे इस विचार के भी हैं कि ये परिस्थितियाँ संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत दावा की गई अनुरोध को अस्वीकार करने को भी उचित ठहराती हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

16. यह निर्विवाद है कि दिनांक 10.2.2003 के आक्षेपित आदेश के अनुसार याचिकाकर्ता का स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का आवेदन 20.3.2003 से स्वीकार कर लिया गया था, जबकि वर्तमान याचिका इस न्यायालय में 4.10.2006 को दायर की गई है। यह भी निर्विवाद है कि 15.3.2005 को याचिकाकर्ता ने प्रतिवादियों को 24 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान करने का निर्देश देने हेतु रिट याचिका संख्या 1133/2005 दायर की थी। उस संपूर्ण याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन और दिनांक 10.2.2003 के आक्षेपित आदेश को कोई चुनौती नहीं दी गई है। रिट याचिका संख्या 1133/2005 का इस न्यायालय द्वारा 11.5.2005 को निपटाया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को दस दिनों के भीतर उत्तरवादी क्रमांक 2 के समक्ष एक नया अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई थी, जिसे बदले में याचिकाकर्ता की शिकायत पर विचार करने के बाद अगले दो महीनों के भीतर उस पर निर्णय लेने और उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था। यहां फिर से, उत्तरवादी क्रमांक 2 से संपर्क करते समय, याचिकाकर्ता ने दिनांक 10.2.2003 के आक्षेपित आदेश के संबंध में कोई शिकायत नहीं उठाई और स्वयं को रिट याचिका

संख्या 1133/2005 में की गई प्रार्थना तक ही सीमित रखा, जिसमें सेवानिवृत्ति देय राशि प्रदान करने का अनुरोध किया गया था। यह आक्षेपित नहीं है कि याचिकाकर्ता को अनुलग्नक आर-2 के माध्यम से लगभग अपनी सभी सेवानिवृत्ति देय राशि प्राप्त हो चुकी है और वह 29.07.2003 से नियमित रूप से पेंशन प्राप्त कर रहा है। अतः स्पष्ट है कि WP 1133/2005 के निपटारे के बाद इस कोर्ट द्वारा 11.05.2005 के आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने तत्काल याचिका दायर करने में लगभग डेढ़ साल का समय लिया।

17. याचिकाकर्ता का यह कथन कि रिट याचिका संख्या 1133/2005 दाखिल करते समय उन्होंने पूर्ववर्ती अधिवक्ता से दिनांक 10.02.2003 के अपने सेवानिवृत्ति आदेश को चुनौती देने का अनुरोध किया था, गलत और बाद का विचार प्रतीत होता है, क्योंकि याचिकाकर्ता एक साक्षर व्यक्ति है, उसने शपथ पत्र दाखिल करके तथ्यों का विधिवत सत्यापन किया था और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दिनांक 11.05.2005 के आदेश के बाद उसने उत्तरवादी क्रमांक 2 को अभ्यावेदन दिया, सभी सेवानिवृत्ति लाभ प्राप्त किए और फिर उनका उपयोग किया। यहां तक कि पेंशन देने का आदेश भी 29.07.2003 को पारित किया गया था, फिर भी वह 04.10.2006 तक यानी वर्तमान याचिका दाखिल करने की तिथि तक चुप रहा। अतः याचिकाकर्ता का यह कहना उचित नहीं है कि पूर्ववर्ती अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष गलत याचिका दाखिल की और उसमें मुख्य शिकायत नहीं रखी गई।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

18. न्यायालय को याचिकाकर्ता के इस तर्क में कोई बल नहीं मिलता कि याचिका दायर करने में हुई देरी को न्याय के बड़े हित में माफ किया जाना चाहिए क्योंकि संबंधित समय में याचिकाकर्ता को उस समय पैसों की सख्त जरूरत थी और इसीलिए उसने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन किया था। यदि याचिकाकर्ता ने पैसों की जरूरत के कारण स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुना है, तो उसे 11.5.2005 को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का लाभ उठाकर अधिकारियों से लाभ प्राप्त करने के बाद अपना रुख बदलने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यद्यपि भले ही याचिकाकर्ता का मामला गुण-दोष के आधार पर मजबूत हो और दिनांक 10.2.2003 का आक्षेपित आदेश कुछ गलत तथ्यों पर आधारित प्रतीत होता हो, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाने और इतनी देरी से इस न्यायालय में आने के कारण इसे अपास्त नहीं किया जा सकता। याचिकाकर्ता के आचरण और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से स्पष्ट है कि

यह याचिका याचिकाकर्ता द्वारा बाद में सोची-समझी रणनीति के रूप में दाखिल की गई है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति की राशि का बड़ा हिस्सा पहले ही मिल चुका है और इसे स्वीकार करने और उपयोग करने के बाद, उसे अपने पूर्व रुख से पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इसके अलावा, यह एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि देरी और लापरवाही संविधान के अनुच्छेद 226 के प्रावधानों को लागू करने का एक महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि यदि कोई व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सतर्क नहीं है और स्थिति को स्वीकार कर लेता है, तो उसे विलंबित अवस्था में अनुतोष नहीं दी जा सकती है।

19. इस मामले में शामिल तथ्यों को देखने के बाद, इस न्यायालय की राय है कि याचिकाकर्ता द्वारा अपने तर्क के समर्थन में उद्धृत मामले-कानून, पूरी तरह से अलग आधार पर होने के कारण, याचिकाकर्ता के लिए किसी भी प्रकार से सहायता नहीं करता हैं।

20. परिणामस्वरूप, याचिका सारहीन होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है। इसे इसी प्रकार खारिज किया जाता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/-
प्रीतिंकर दिवाकर
न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated by Ananya Chatterjee